मुनि प्रणम्य सागर जी पूजन

वीर प्रभु अंतिम तीर्थंकर वंदन करता बारंबार
चौबीसौं तीर्थेश हुए जो उनको वंदन बारंबार,
नंत हुए हैं सिद्ध प्रभु जी उनको मन वच तन में धार
तीन न्यून नौ कोटि मुनि को वंदन करता बारंबार

पांचों परमेष्ठी को पूजूं नमन करूं निज उर में धार,
जन्म जन्म में जैन धर्म ही पाना चाहूं बारंबार,
ज्ञान सिंधु विद्यासागर को प्रणाम करता हूं सुखकार,
हे प्रणम्य सागर गुरु मेरे वंदन करता बारंबार...

ॐ ह्रीं मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अत्र अवतर-अवतर संवौषट आह्वाननं ।
ॐ ह्रीं मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।
ॐ ह्रीं मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

बाह्य नीर तो जीव युक्त है जन्म जन्म में इसे पिया,
फिर भी प्यास बुझी ना मेरी प्यासा ही रह गया जिया।
जिनवाणी रस पीकर मैं तो आज बहुत हर्षाया हूं,
गुरु को पाकर कर्म खपाकर मंद-मंद मुसकाया हूं।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जड़ वस्तु में शांति मिले ना, नहीं शांति है विषयों में,
शांति का है एक ठिकाना गुरु कहते वह आतम में।
आत्म शांति को पाने गुरुवर चंदन आज चढ़ता हूं,
गुरु संसर्ग मिले मुझको भी यही भाव मन लाता हूं।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

श्वेत वर्ण है अक्षत का पर मैं तो काला भीतर से,
कैसे पूजूं गुरुवर को मैं रागी द्वेषी हूं मन से।
राग द्वेष का शमन करूं मैं रत्नत्रय को धारूंगा,
मोक्ष मार्ग पर चलते-चलते आतम शुद्ध बनाऊंगा।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा ।

कामी हूं मैं दुष्ट बहुत हूं व्यसनों में हर्षाता हूं,
भवों-भवों के संस्कारों से मन विकार भर लाता हूं।
उन कर्मों की रीत पुरानी वे ना पीछा छोड़ेंगे,
तेरी पूजन भक्ति से ही भागेंगे वे दोडेंगे।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय काम बाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

कितना कितना खाया मैंने सबकुछ खाकर पचा दिया,
क्षुधा न मेरी शांत हुई यह तन भोजन में गवा दिया।
मैं नैवेद्य बनाकर लाया चरणों में वह अर्पण है,
शुद्ध भाव से करता भक्ति मेरे भाव समर्पण है।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मिथ्यातम का रोग था भारी मैं था जिससे सना हुआ,
सब तत्त्वों को उल्टा समझा फिर भी अहम् में तना हुआ।
मोह कर्म ये ऐसा टूटे फिर से कभी ना जुड़ पाए,
अंधकार सारा मिट जाए आतम में ना रह पाए।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय महामोह अन्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

गा-गा करके अर्घ चढ़ाए दुनिया में ज्ञानी कहलाए,
तीव्र कषायें मन में रखकर रंग मैंने कितने दिखलाए।
नहीं हुआ संतुष्ट मैं फिर भी तेरे दर पे आया हूं,
अष्ट कर्म का नाश हो मेरे धूप चढ़ाने आया हूं।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

भटक भटककर तीन लोक में जीव बहुत ही रोया है,
नहीं पता कुछ उसको उसने पाकर कितना खोया है।
बिन सच्चे दर्शन के उसने व्रत धारे सब निष्फल है,
रत्नत्रय को धार सयाने शिवसुख ही उसका फल है।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

घुमा ढूंढा बहुत था लेकिन ईष्ट कभी भी नहीं मिले,
नहीं मिले जो मन की सुन लें पापों को जो दूर करें।
नहीं सुने थे वचन गुरु के, गुरु कभी भी नहीं मिले,
मुझे मिले मम प्रणम्य गुरु जी, भाग्य खुल गए जाग गए।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

प्रणम्य गुरु को नमस्कार कर उनका नित गुणगान करूं।
उनके पावन चरण कमल में शीश धरूं प्रणाम करूं।।
भाव बनें गुरु भक्ति करूं जो सम्यकदर्शन कारण है।
भाव सहित मैं उनको पूजूं जो मुक्ति का साधन है।।
वीरेन्द्र पिता सरिता देवी गृह जन्मे जब सर्वेश लला।
हर्षित हो परिवार जनों ने खुब खिलाया नचा-नचा।।
था विवेक बचपन से जिनको अनीतियों से बचते थे।
बुरा ना चाहा कभी किसी का पापों से वे डरते थे।।
कुव्यसनों को, कुनितियों को और देखते विषयों को।
अनित्य है विषय भोग सभी यें यही भाव मन लाते वों।।
धीरे धीरे बढ़ते-बढ़ते शुरु हुआ उनका चिंतन।
दो मित्रों की घटना सुनकर दहल उठा उनका चेतन।।
अल्प आयु में अकाल मृत्यु के समाचार ने हिला दिया।
कैसे अपनों ने अपने को बेरहमी से जला दिया।।
मोह जाल तब काम ना आया कुछ पल में ही भुला दिया।
इस जग की है रीत पुरानी काम लिया फिर भगा दिया।।
घाव थे गहरे लगे चित्त पर चित्त लगा ना किसी दिशा।
विषयों में ना चित्त लगाया चित्त निराकुल तभी हुआ ।।
ब्रह्मचारी बन पुष्पदंत के चरणों में सिर रखकर जी।
स्वप्न दिखे फिर युगल मुनि के दर्शन को मन करता जी।।
विद्या गुरु का प्रथम दर्श कर बड़े बाबा की नगरी में।
पुण्य बढ़ाया गुरु को पाया यही दिखा था सपने में।।
गुरु चरणों की शरण को पाकर आत्मशक्ति को दृढ़ करके।
स्वाध्याय में बढ़ी लीनता प्रतिमाओं में बढ़ करके।।
मुक्तागिरी वह क्षेत्र सुपावन नंत आत्मा सिद्ध बनी।
दीक्षा पाई इसी क्षेत्र से भाव विशुद्धि वहाँ बनी।।
नाम प्रणम्य धरा गुरु ने अपने जैसा बना दिया।
महावीर के लाल ने देखो महावीर सा बना दिया।।
बड़े बड़े ग्रंथो को पढ़कर हमपर जो उपकार किया।
ऐसी ऐसी कृतियां रचदी सबने जय जयकार किया।।
वर्धमान स्तोत्र में जिनने महावीर की भक्ति की।
पार्श्व कथा सुनने गुरुमुख से भीड़ लगी थी भव्यों की।।

कुंद-कुंद के प्रवचनों को सरल सरलतम बना दिया।
रामचंद्र जी पुरुषोत्तम का दर्शन तुमने करा दिया।।
बहुभाषी हो आप गुरु जी प्राकृत भाषा आगम की।
सरल बना दी इतनी तुमने श्रोता बने सभी ज्ञानी।।
तुमने अर्हम योग सिखलाकर सबका रोग ही मिटा दिया।
ज्ञान ज्ञान की बाते करके जिन आगम भी सिखा दिया।।
और बहुत उपकार आपके हम तो क्या क्या लिख पाए।
गुणवानो के गुण को कैसे अबोध बालक कह पाए।।
तुम धीरज, समता के धारी गुरुवर तुम रत्नत्रय धारी।
तुम ही हो भगवान हमारे तारो अब मेरी है बारी।।

एक भावना यही मैं भाऊ, गुरु के दर्शन भव भव पाऊं।
बिन इच्छा के अर्घ चढ़ाऊ, तुम जैसा मैं बनना चाहूं।।

ॐ ह्रीं अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर मुनिन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

हे गुरुवर मैं विनती करता मुझे सन्मार्ग दिखा देना।
पुष्प समर्पण तुम चरणों में मुझसे मुझे मिला देना।।

समर्पण जैन
बड़ौत